प्राचीन नवीन या समीचीन ?

मनुष्यमें प्राचीनताका मोह इतना दृढ़ है कि अच्छीसे अच्छी बातको वह प्राचीनताके अस्त्रसे उड़ा देता है और बुद्धि तथा विवेकको ताकमें रख उसे 'आधुनिक' कहकर अग्राह्य बनानेका दुष्ट प्रयत्न करता है। इस मूढ़ मानवको यह पता ही नहीं है कि प्राचीन होनेसे ही कोई विचार अच्छा और नवीन होनेसे ही कोई बुरा नहीं कहा जा सकता। मिथ्यात्व हमेशा प्राचीन होता है, अनादिसे आता है और सम्यग्दर्शन नवीन होता है पर इससे मिथ्यात्व अच्छा और सम्यक्त्व बुरा नहीं हो सकता। आचार्य समन्तभद्रने धर्मदेशनाकी प्रतिज्ञा करते हुए लिखा है "देशयामि समीचीनं धर्मं कर्मनिवर्हणम्" इसमें उनने प्राचीन या नवीन धर्मके उपदेश देनेकी बात नहीं कही है, किन्तु वे 'समीचीन' धर्मका उपदेश देना चाहते हैं। जो समीचीन अर्थात् सच्चा हो, बुद्धि और विवेकके द्वारा सम्यक् सिद्ध हुआ हो, वही ग्राह्य है न कि प्राचीन या नवीन। प्राचीन में भी कोई बात समीचीन हो सकती है और नवीनमें भी कोई बात समीचीन। दोनोंमें असमीचीन बातें भी हो सकती हैं। अतः परीक्षा कसौटीपर जो खरा समीचीन उतरे वही हमें ग्राह्य है। प्राचीनताके नामपर पीतल ग्राह्य नहीं हो सकता और नवीनताके कारण सोना त्याज्य नहीं। कसौटी रखी हुई है, जो कसनेपर समीचीन निकले वही ग्राह्य है।

आचार्य सिद्धसेन दिवाकरने बहुत खिन्न होकर इन प्राचीनता-मोहियोंको सम्बोधित करते हुए छठवीं द्वात्रिंशतिकामें बहुत मार्मिक चेतावनी दी है, जो प्रत्येक संशोधकको सदा स्मरण रखने योग्य है—

"यदशिक्षितपण्डितो जनो विदुषामिच्छति वक्तुमग्रतः।
न च तत्क्षणमेव शीर्यते जगतः किं प्रभवन्ति देवताः॥"

समीक्षक विद्वानोंके सामने प्राचीन रूढ़िवादी बिना पढ़ा पण्डितम्मन्य जब अंट-संट बोलनेका साहस करता है, वह तभी क्यों नहीं भस्म हो जाता ? क्या दुनियामें कोई न्याय-अन्यायको देखनेवाला देवता नहीं है ?

"पुरातनैर्या नियता व्यवस्थितिस्तथैव सा किं परिचिन्त्य सेत्स्यति।
तथेति वक्तुं मृतरूढगौरवादहं न जातः प्रथयन्तु विद्विषः॥"

पुराने पुरुषोंने जो व्यवस्था निश्चित की है वह विचारनेपर क्या वैसी ही सिद्ध हो सकती है ? यदि समीचीन सिद्ध हो तो हम उसे समीचीनताके नामपर तो मान सकते हैं, प्राचीनता के नामपर नहीं। यदि वह समीचीन सिद्ध नहीं होती तो मरे हुए पुरुषोंके झूठे गौरवके कारण 'तथा' हाँ में हाँ मिलानेके लिए मैं उत्पन्न नहीं हुआ हूँ। मेरी इस समीचीनप्रियताके कारण यदि विरोधी बढ़ते हों तो बढ़ें। श्रद्धावश कबरपर फूल तो चढ़ाये जा सकते हैं। पर उनकी हर एक बातका अन्धानुसरण नहीं किया जा सकता।

"बहुप्रकाराः स्थितयः परस्परं विरोधयुक्ताः कथमाशु निश्चयः।
विशेषसिद्धाविय्मेव नेति वा पुरातनप्रेमजडस्य युज्यते॥"

पुरानी परम्परायें बहुत प्रकार की हैं, उनमें परस्पर पूर्व-पश्चिम जैसा विरोध भी है। अतः बिना विचारे प्राचीनताके नामपर चटसे निर्णय नहीं दिया जा सकता। किसी कार्य विशेषकी सिद्धिके लिए 'यही व्यवस्था है, अन्य नहीं, यही पुरानी आम्नाय है' आदि जड़ताकी बातें पुरातनप्रेमी जड़ ही कह सकते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"जनोऽयमन्यस्य मृतः पुरातनः पुरातनैरेव समो भविष्यति।
पुरातनेष्वित्यनवस्थितेषु कः पुरातनोक्तान्यपरीक्ष्य रोचयेत् ॥"

आज जिसे हम नवीन कहकर उड़ा देना चाहते हैं वही व्यक्ति मरनेके बाद नई पीढ़ीके लिए पुराना हो जायगा और पुरातनोंकी गिनतीमें शामिल हो जायगा। प्राचीनता अस्थिर है। जिन्हें आज हम पुराना कहते हैं वे भी अपने जमानेमें नये रहे होंगे और उस समय जो नवीन कहकर दुरदुराये जाते होंगे वे ही आज प्राचीन बने हुए हैं। इस तरह प्राचीनता और पुरातनता जब कालकृत है और कालचक्रके परिवर्तनके अनुसार प्रत्येक नवीन पुरातनोंकी राशिमें सम्मिलित होता जाता है तब कोई भी विचार बिना परीक्षा किये इस गड़बड़ पुरातनताके नामपर कैसे स्वीकार किया जा सकता है ?

"विनिश्चयं नैति यथा यथालसस्तथा तथा निश्चितवत्प्रसीदति।
अवन्ध्यवाक्या गुरवोऽहमल्पधीरिति व्ययस्यन् स्ववधाय धावति ॥"

प्राचीनतामूढ़ आलसी जड़ निर्णयकी अशक्ति होनेके कारण अपने अनिर्णयमें ही निर्णयका भान करके प्रसन्न होता है। उसके तो यही अस्त्र हैं कि अवश्य ही इसमें कुछ तत्त्व होगा? हमारे पुराने गुरु अमोघवचन थे, उनके वाक्य मिथ्या नहीं हो सकते, हमारी ही बुद्धि अल्प है जो उनके वचनों तक नहीं पहुँचती आदि। इन मिद्धावृत आलसी पुराणप्रेमियोंकी ये सब बुद्धिहत्याके सीधे प्रयत्न हैं और इनके द्वारा वे आत्मविनाशकी ओर ही तेजीसे बढ़ रहे हैं।

"मनुष्यवृत्तानि मनुष्यलक्षणैर्मनुष्यहेतोर्नियतानि तैः स्वयम्।
अलब्धपाराण्यलसेषु कर्णवानगाधपाराणि कथं ग्रहीष्यति ?॥"

जिन्हें हम पुरातन कहते हैं वे भी मनुष्य ही थे और उन्होंने मनुष्योंके लिए ही मनुष्यचरित्रोंका वर्णन किया है। उनमें कोई दैवी चमत्कार नहीं था। अतः जो आलसी या बुद्धि जड़ हैं उन्हें ही वे अगाध गहन या रहस्यमय मालूम हो सकते हैं पर जो समीक्षक चेता मनस्वी हैं वह उन्हें आँख मूँदकर 'गहन रहस्य' के नामपर कैसे स्वीकार कर सकता है ?

"यदेव किंचित् विषमप्रकल्पितं पुरातनैरुक्तमिति प्रशस्यते।
विनिश्चताप्यद्य मनुष्यवाक्कृतिर्न पठ्यते यत्स्मृतिमोह एव सः ॥"

कितनी भी असम्बद्ध और असंगत बातें प्राचीनताके नामपर प्रशंसित हो रही हैं और चल रही हैं। उनकी असम्बद्धता 'पुरातनोक्त और हमारी अशक्ति' के नामपर भूषण बन रही है तथा मनुष्यकी प्रत्यक्ष-सिद्ध बोधगम्य और युक्तिप्रवण भी रचना आज नवीनताके नामपर दुरदुराई जा रही है। यह तो प्रत्यक्षके ऊपर स्मृति की विजय है। यह मात्र स्मृतिमूढ़ता है। इसका विवेक या समीक्षणसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

"न गौरवाक्रान्तमतिर्विगाहते किमत्र युक्तं किमयुक्तमर्थतः।
गुणावबोधप्रभवं हि गौरवं कुलाङ्गनावृत्त मतोऽन्यथा भवेत् ॥"

पुरातनके मिथ्यागौरवका अभिमानी व्यक्ति युक्त और अयुक्तका विचार ही नहीं कर सकता। उसकी बुद्धि उस थोथे बड़प्पनसे इतनी दब जाती है कि उसकी विचारशक्ति सर्वथा रुद्ध हो जाती है। अन्तमें आचार्य लिखते हैं कि गौरव गुणकृत है। जिसमें गुण है वह चाहे प्राचीन हो या नवीन या मध्ययुगीन, गौरवके योग्य है। इसके सिवाय अन्य गौरवके नामका ढोल पीटना किसी कुशीला कुलकामिनीका अपने कुलके नामसे सतीत्वको सिद्ध करनेके समान ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि कालिदासने भी इन प्राचीनताबद्ध-बुद्धियोंको परप्रत्ययननेयबुद्धि कहा है। वे परीक्षकमतिकी सराहना करते हुए लिखते हैं—

"पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः॥"

अर्थात् सभी पुराना अच्छा और सभी नया बुरा नहीं हो सकता। समझदार परीक्षा करके उनमेंसे समीचीनको ग्रहण करते हैं। मूढ़ ही दूसरेके बहकावेमें आता है।

अतः इस प्राचीनताके मोह और नवीनताके अनादरको छोड़कर समीचीनताकी ओर दृष्टि रखनी चाहिए, तभी हम नूतन पीढ़ीकी मतिको समीचीन बना सकेंगे। इस प्राचीनताके मोहने असंख्य अन्धविश्वासों, कुरूढ़ियों, निरर्थक परम्पराओं और अनर्थक कुलाम्नायोंको जन्म देकर मानवकी सहज बुद्धिको अनन्तभ्रमोंमें उलझा दिया है। अतः इसका सम्यग्दर्शनकर जीवनको समीक्षापूर्ण बनाना चाहिये।

●

जैन अनुसंधानका दृष्टिकोण

यह एक सिद्ध बात है कि साहित्य अपने युगका प्रतिबिम्ब होता है। उसके निर्माताओंका एक अपना दृष्टिकोण रहनेपर भी साहित्यको तत्कालीन सामयिक समानतन्त्रीय या प्रतितन्त्रीय साहित्यके प्रभावसे अछूता नहीं रखा जा सकता। युद्ध क्षेत्रकी तरह दार्शनिक साहित्यका क्षेत्र तात्कालिक सन्धियोंके अनुसार मित्रपक्ष और शत्रुपक्षमें विभाजित होता रहता है। जैसे ईश्वरवादके खण्डनमें जैन, बौद्ध और मीमांसक मिलकर काम करते हैं यद्यपि उन सबके अपने दृष्टिकोण जुदा-जुदा हैं पर वेदके अपौरुषेयत्वके विचारमें मीमांसक विरोध पक्षमें खड़ा हो जाता है और जैन, बौद्ध साथ चलते हैं। क्षणिकत्वके खण्डनके प्रसंगमें जैन और बौद्ध दोनों परस्पर विरोधी बनते हैं और मीमांसक जैनका साथ देता है। तात्पर्य यह कि किसी भी सम्प्रदायके साहित्यमें विभिन्न तत्कालीन साहित्योंका विरोध या अविरोध रूपमें प्रतिबिम्ब अवश्यंभावी है। अतः किसी भी साहित्यका संशोधन करते समय तत्कालीन सभी साहित्यका अध्ययन नितान्त अपेक्षणीय है। बिना इसके वह संशोधन एकदेशीय होगा।

अनेक आचार्योंने तत्कालीन परिस्थितियोंके कारण, जैन संस्कृतिके पीछे जो मूल विचारधारा है उसे भी गौण कर दिया है और वे प्रवाह पतित हो गये हैं। ऐसे तथ्योंका पता लगानेके लिए प्रत्येक विचार विकासका परीक्षण हमें ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दोनों दृष्टिकोणोंसे करना होगा। जैन विचारधाराका मूल रूप क्या था और किन-किन परिस्थितियोंसे उसमें क्या-क्या परिवर्तन आये इसके लिए बौद्ध पिटक और वैदिक ग्रन्थोंका गम्भीर आलोड़न किए बिना हम सत्य स्थितिके पास नहीं पहुँच सकते।

अवान्तर सम्प्रदायोंके अभेद मुद्दोंकी विकास परम्परा और उनके उद्भवके कारणोंपर प्रकाश भी इसी प्रकारके बहुमुखी अध्ययनसे संभव हो सकता है। यद्यपि इस प्रकारके अध्ययनके आलोकमें अनेक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org